IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्राचीन शिल्प शास्त्रों में उल्लेखित एवं उत्कीर्ण अभिलेखों में शिल्पी चिन्ह

डॉ. गजेन्द्र सिंह
सहायक प्रोफेसर–इतिहास विभाग
राजकीय महाविद्यालय, रेवाड़ी(हरियाणा)

शोध–सारांश

शिल्पी चिन्ह का विषय इतना विस्तृत है और इस विषय पर पहले से ही इतना कुछ लिखा जा चुका है कि मौजूदा साहित्य में कुछ भी जोड़ने का प्रयास करना पहली बार में अतिश्योक्तिपूर्ण प्रतीत हो सकता है। हालांकि, जहां तक मुझे पता है, बहुत कम सामने आया है कि जो भारत में शिल्पी चिन्ह से सम्बन्धित है। प्रमाण एवं अध्ययन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण होने पर भी मंदिरों अथवा अन्य वास्तु रचना की दीवारों, छत, फर्श तथा विभिन्न वास्तु एवं शिल्प खंडो में अंकित शिल्पो चिन्ह अथवा शिल्पी नाम आम तौर से उपेक्षित रहे हैं।[1] इसका कारण शायद यह है कि इन भवनों के वास्तु एवं शिल्प वैभव की तुलना में शिल्पियों द्वारा अंकित चिन्ह अथवा नाम महत्वहीन और नगण्य है। प्राचीन वास्तु एवं शिल्प का अध्ययन भी वास्तु एवं शिल्प शास्त्र अथवा दिक्काल पर आधारित विश्लेषण तक ही सीमित रहा है और शैलीगत विकास का आधार भी संरचनाओं में अंतर अथवा परिवर्तन माना गया है। इसीलिये विभिन्न वास्तु एवं शिल्प शैलियों में शिल्पियों के योगदान की ओर ध्यान नहीं दिया गया और भारतीय कला के इतिहास में भी कलाकार

के अनामत्व (एनोनिमिटी) पर जोर दिया जाता रहा है।[2] इस शोध पत्र में मुझे चिन्हों के कुछ प्रतीकवाद को स्पष्ट करने का प्रयास करने और उस प्रतीकवाद और अन्य मामलों के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्धों का सुझाव देने का प्रयास किया गया है, हालांकि, मैं इतने गहरे विषयों पर राय व्यक्त करने के योग्य नहीं हूं। फिर भी, मैं यह आशा करने का साहस करता हूं कि जिन लोगों ने शायद पहले इसका अध्ययन नहीं किया है। उनके लिए बहुत रुचि के विषय का परिचय देकर, मैं व्यवहारिक और व्यक्तिगत जांच की उस भावना में कुछ प्रोत्साहन अवश्य शामिल करूंगा। जो मैसोनिक ज्ञान की प्राप्त में बहुत फायदेमंद है।

प्रस्तावना :

प्रत्येक देश में इतिहासकार अपनी उन सूचनाओं के लिए पुरातत्व पर आश्रित रहते हैं, जहां कि वे पुनः अतीत में जा नही सकते और उस काल का इतिहास लिखना चाहते हैं। विशेष रूप से भारत में तो गत डेढ़ शताब्दियों से पूर्व–मुस्लिम युग का समूचा इतिहास अन्वेषकों द्वारा प्राप्त किए गए तथ्यों एवं उत्खननकर्ताओं की सामग्री के अध्ययन पर निर्मित है। भारत में विभिन्न स्थलों पर उत्खनन के द्वारा युगों–युगों की भारतोय संस्कृति अपने गौरवपूर्ण एवं आकर्षक स्वयप को लिए हुए प्रकट हुई है।[3] शिल्पी चिन्ह जो आकार में नगण्य किन्तु प्रमाण एवं अध्ययन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण होने पर भी मंदिरों अथवा अन्य वास्तु रचना की दीवारों, छत, फर्श तथा विभिन्न वास्तु एवं शिल्प खंडो में अंकित है जो आम तौर से उपेक्षित रहे हैं। वास्तु और शिल्प शास्त्रों मं उल्लेखित विधान के अन्तर्गत ही वास्तु अथवा शिल्प रचनाओं का प्रणयन किया गया किन्तु देश और काल में जिन विभिन्न कला शैलियों का विकास हुआ उनका श्रेय शिल्पियों को नहीं दिया गया है।[4]

शिल्पी चिन्ह से अभिप्राय :

शिल्पी चिन्ह एक उत्कीर्ण प्रतीक है। जो अकसर इमारतों और अन्य सार्वजनिक संरचनाओं के साथ पत्थरों पर पाया जाता है। अर्थात् इतिहासकारों ने देखा है कि राजमिस्त्री जिन्होंने प्रतिष्ठित इमारतों को खड़ा किया है उन्होंने कुछ पत्थरों पर हस्ताक्षर चिन्ह, अक्षर, वर्ण या प्रतीक छोड़े है। ये शिल्पी चिन्ह इन इमारतों के इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी ओर अन्तदृष्टि प्रदान करते हैं। वहीं दूसर अर्थ में शिल्पी चिन्ह जो राजमिस्त्री के निशान से भी जाने जाते हैं। शिल्पी चिन्ह एक सामान्य शब्द है जिसका उपयोग चूना पत्थर, जिप्सम और बलुआ पत्थर के कटे हुए ब्लॉकों पर उकेरे गए चित्रात्मक संकेतों की एक विस्तृत श्रृंखला को नामित करने के लिए किया जाता है जो महलों की दीवारों और वास्तुकला के अन्य नमूनों की रचना करते हैं।

शिल्पी चिन्ह बनाने के उद्देय :

पुरातत्वविदों ने कहा है कि शिल्पी चिन्ह केवल एक विशिष्ट निर्माण के वांछित आकार को प्राप्त करने के लिए कार्यबल को नियंत्रित करने के लिए कोड नहीं थे बल्कि उनका एकमात्र उद्धेश्य ''सम्पूर्ण कार्यवाही का दर्शक बनना या आमजन से गोपनीयता बनाए रखना था।''

शोध के उद्देश्य :

शिल्पकार जानबूझकर गुमनाम रहा क्योंकि निर्वेयक्तिकता के मार्ग पर चलते हुए अपनी निजता का त्याग करके वह परब्रहम की प्राप्ति को ही अपना मुख्य लक्ष्य मानता था अर्थात् भारतीय कला के इतिहास में भी कलाकार के अनामत्व (एनोनिमिटी) पर जोर दिया गया है। इस शोध का उद्धेश्य उन गुमनाम कलाकारों को जिन्होंने इतने महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली मंदिरों अथवा अन्य वास्तु रचना की दीवारों, छत, फर्श तथा विभिन्न वास्तु एवं

शिल्प खंडों का निर्माण किया है। उनकी वास्तु तथा शिल्प शैलियों में शिल्पियों के योगदान को तथ्यगत एवं तथ्यपरक पहचान दिलाता है।

शिल्पी चिन्ह अथवा नामों के प्रकार :–

यूरोपीय इतिहासकारों ने शिल्पी चिन्हों तथा नामों के अध्ययन के आधार पर तीन प्रकार के चिन्हों का प्रयोग होना बताया है[5] :–

1. दीवारों पर शिल्पी तथा उपयोग के लिए भेजे जाने से पूर्व पत्थरों पर बैंकर के निशान बनाये गये थे। इन चिन्हों ने बैंकर तथा शिल्पी के नाम की पहचान करने का काम किया, जिन्होंने अपने भुगतानकर्ता को पत्थर तैयार करे दिए थे। इस प्रणाली का उपयोग केवल तभी किया जाता था तब पत्थर का भुगतान समय के बजाय माप के द्वारा किया जाता था।
2. पत्थर के महत्वपूर्ण टुकड़ो की सही स्थापना सुनिश्चित करने के लिए वैधानित चिन्हों का उपयोग किया गया था। खिड़की के जाम पर पत्थरों को रोमन अंक के साथ चिन्हित किया गया है, जिसमें पत्थरों को स्थापित करने के क्रम को निर्देशित किया गया है।
3. पत्थर के स्त्रोत या कभी–कभी गुणवत्ता की पहचान करने के लिए खदान पत्थरों का उपयोग किया जाता था।

जबकि हरिविष्णु सरकार ने नागार्जुनकोण्डा[6] से मिले शिल्पी चिन्हों तथा नामों क अध्ययन के आधार पर शिल्पी चिन्हों के तीन प्रकार बताए हैं जो इस प्रकार हैं :–

1. पहले प्रकार में शिल्पियों तथा मूर्तिकारों के नाम है जो नागार्जुन कोण्डा के बहुश्रुतीय विहार तथा मंदिर में उत्कीर्ण किये गये है। जैसे इस्वाकु शासक एहुवल चान्डमूल के राज्यकाल के दूसरे वर्ष की एक तक्षित चैत्य पट्टिका तथा स्थल 64

में इन्होंने 'धमस' नाम पढ़ा है तथा स्थल 85 जो बौद्ध प्रतिष्ठान था के फर्श में 'हयस' नाम प्रकाश में आया है।

2. द्वितीय श्रेणी में शिल्पी नाम के साथ प्रतीक मिलते है। उदाहरणार्थ स्थल 64 के शिला स्तम्भ में 'विधिकस' धनुष–बाण प्रतीक के साथ लिखा गया था। एक स्तम्भ में नाम तथा प्रतीक चिन्ह लम्बाई में उत्कीर्ण किये गये थे। जबकि एक अन्य स्तम्भ में केवल धनुषबाण चिन्ह था।

3. तृतीय श्रेणी में केवल शिल्पी चिन्ह है जो दो प्रकार के हैं : धनुष बाण तथा डमरु।

भारत में शिल्पी चिन्हों का विकास :

शिल्पी चिन्ह अथवा नाम भरहुत, सांची, कार्ला, कन्हेरी, मथुरा आदि के आरम्भिक ऐतिहासिक तथा परवर्ती मध्यकाल के स्मारकों में उपलब्ध है। प्रसन्नकुमार आचार्य ने भी भारतीय वास्तुशास्त्र कोश में अभिलेखों में उल्लिखित शिल्पियों, स्थपतियों तथा मूर्तिकारों के नाम दिये है।[7]

शुंगकालीन मूर्तिकला के प्रधान नमूने सांची के अशोककालीन विशाल स्तूप के चारों ओर की प्रदक्षिणा की दोहरी वेदिका और चारों दिशाओं के अलंकृत तोरणद्वार हैं। सांची के स्तूप भोपाल राज्य में स्थित है।[8] सांची के स्तूप 2 की शिलाओं में ब्राह्मी के अतिरिक्त खरोष्ठी लिपि के कुछ अक्षर भी उत्कीर्ण किये गये हैं जिसके आधार पर वहां विदेशी आकृतियों तथा कुछ कला अभिप्रायों को यवन शिल्पकारों द्वारा प्रणीत माना गया है।

शिल्पकला की दृष्टि से भरहूत मूर्तिकला का प्रमुख केन्द्र है। भरहूत का स्तूप नागौद राज्य में है जिसमें कनिंघम ने खुदाई करवा कर स्तूप के चारों ओर की बाड व स्तम्भों के अनेक अवशेष कलकत्ता संग्रहालय में भिजवा दिये थे।[9] भरहुत में भी कुछ

ब्राहमी और खरोष्ठी अक्षर मिले है जिन्हें शिल्पी चिन्ह माना गया है। अमरावती का यह स्तूप दक्षिण भारत के गुंटूर जिले के अमरावती नामक कस्बे में स्थित है। इसमें शिला फलकों पर बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का अंकन और अलंकरण किया गया है।[10]

आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में, ''ऐसा जान पड़ता है मानों अमरावती के रूप में इन्द्र की सुधर्मा सभा के दिव्य अवशेषों की लूट की गई। पर संतोष इतना ही है कि अमरावती के अधिकांश शिलापट्ट नष्ट होन`से बचा लिए गए और अब उनके आधार पर मूल स्तूप का ब्यौरेवार अध्ययन संभव है। यह महाचेतिय किसी देवविमान के सदृश विशाल अंकों से समन्वित और श्रष्ठ कला के अंगोपांगो से संयुक्त एवं बहुअर्थगामिनी साम्रगी से सुशोभित था। बौद्ध धर्म और सातवाहन नागरियों के सांस्कृतिक जीवन के अपरिमित दृश्य शिलापट्टो पर उत्कीर्ण किए गए, यदि मनुष्य के अन्दर कल्पना का बल हो तो आज भी उसके गौरव का चित्र खींचा जा सकता है।''[11]

गुंटूर जिले में ही नागार्जुनकोण्डा नामक स्थान से एक स्तूप के अवशेष मिले हैं। ईक्ष्वाकुवंशीय राजाओं ने हल्के रंग के मुलायम चूना पत्थरों से जो स्तूप बनवाये थ। उनके अलंकरण और कलाकृतियां आध्यात्मिकता के साथ–साथ कोमल भावनाओं के सम्मिश्रण से उत्कोर्ण की गई है। अमरावती व नागार्जुनकोण्डा की मूर्तियों और अंकरणों में कुछ रोमन प्रभाव भी पाया जाता था।[12]

नागार्जुनकोण्डा और अमरावती से प्राप्त शिल्पी चिन्हों की समानता के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि एक ही शिल्पी संघ के शिल्पियों ने इन दोनों स्थलों में निर्माण कार्य किया था। नागार्जुनकोण्डा में ब्राहमी लिपि में उत्कीर्ण शिल्पी चिन्हों की

सहायता से न केवल कुछ संरचनाओं का काल निर्धारण किया गया है बल्कि यह भी देखा गया है कि विभिन्न अंगो के निर्माण में अलग–अलग शिल्पी संघ विशेषता रखते थे।[13]

भारत सरकार के कदम :

भारत सरकार का प्रथम अधिकारपूर्ण शासकीय कार्य था सन 1862 ई. में जनरल अलक्जैंडर कर्निघंम को पुरातात्विक सर्वेयर के रूप में नियुक्त करना। इसमें लॉर्ड केनिंग की प्रेरणा थी, जिसने प्रथम बार यह घोषणा की थी कि ब्रिटिश सरकार का भारत के प्रति उसके 'अतीत के गौरवपूर्ण धरोहर की रक्षा करने का कर्तव्य है। भारतीय प्राचीनता के प्रति उसका इस प्रकार का पवित्र अनुराग निस्सन्देह स्तुत्य था। लगभग आधी सदी तक जनरल कर्निघम की भी इस क्षेत्र के प्रत्येक विभाग में अनुपम सेवाएं प्रशंसनीय रही है।[14]

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की 1871–72 की रपट में एलेक्जेंडर कनिंघम ने अपने सहायकों को निर्देश दिये थे[15] कि वे प्रत्येक भवन में लगाये गये पत्थरों में सावधानी से शिल्पी चिन्ह देखें जो लगभग सभी भवनों में होते है, इनकी सहायता से तत्कालीन लिपि माला जानी जा सकती है जो तिथि निर्धारण में सहायक हो सकती है।

सारनाथ में स्थित धमेख विशाल स्तूप वाराणसी से 13 कि.मी. दूर है। इसका निर्माण 500 इ. में सम्राट अशोक द्वारा 249 ई.पू. बनाये गये स्तूप के स्थान पर किया गया है। इन स्तूपो में महात्मा बुद्ध से जुड़ी निशानियां रखी गई है।[16]

कार्लाइल ने अपनी 1877–78–79–80 की रपट में बताया कि उन्हें गाजी के समीप बैरण्ट नामक स्थल से प्राप्त प्राचीन ईंटो में म, य, वि, लह, रास अथवा दास, रग अथवा रत आदि अक्षर अथवा शब्द मिले।[17]

नालन्दा विश्वविद्यालय के अवशेषों की खोज कनिंघम ने की थी।[18] इसकी स्थापना 450 ई. में गुप्त शासक कुमारगुप्त ने की थी।[19] इस विश्वविद्यालय का अस्तित्व 12वीं सदी तक बना रहा।

शाहढेरी की खुदाई डेविड ब्रेनार्ड स्पूनर[20] ने की थी जहां से बुद्ध की कई मूर्तियां मिली है जो कनिष्क कालीन हैं।

जमालगढ़ी उत्तरी पाकिस्तान के खैबर पख्तूनख्वा प्रांत में मर्दन से 13 कि.मी. दूरी पर स्थित शहर है जो पहली से पांचवी शताब्दी ई. तक बौद्ध मठ था जिसे 1848 में कनिंघम ने खोजा था। मठ में खरोष्ठी शिलालेख भी खोजा गया था जो अब पेशावर के संग्रहालय में रखा है।[21]

इन उपरोक्त केन्द्रों से मिले शिल्पी चिन्हों के परिणामें का उल्लेख करने के साथ–साथ इनकी सहायता से निर्माण काल निर्धारण करने में भी सहायता ली।

शिल्पी चिन्हों के विकास का द्वितीय चरण :

1911 में गौरहम की शिल्पी चिन्हों पर 'इंडियन मेसन्स मार्क्स आफ दि मुगल डाइनेस्टी'[22] नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। गौरहम की पुस्तक तो फ्रीमेसनों के लिये लिखी गई थी जिसमें उन्होने भारतीय इस्लामी स्थापत्य की कुछ प्रमुख इमारतों, दिल्ली का कुतबुमीनार – कुतुब मीनार के आधार के पास के आंगनों का पुर्ननिर्माण 1180 और 1230 ई. के बीच मुसलमानों द्वारा किया गया था और पुराने झंडे के पत्थरों पर केवल तीन निशान मिले है। उन्होने माना है कि वे इससे कहीं अधिक उम्र के हो सकते है जो अन्य निशान उनके सामने आए हैं।[23]

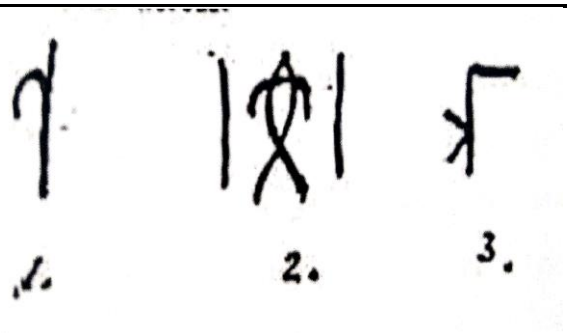

इलाहाबाद का किला[24], बी केनेथ मैकेंजी ने इलाहाबाद के किले के बारे में लिखा है, ''कई प्राचीन मूर्तिकला पत्थरों का उपयोग हाल की सरंचनाओं में किया है और इन पर चिनाई के कई प्रसिद्ध प्रतीकों को अनियमित रूप से उकेरा गया है जो कि अत्यन्त दूरस्थ काल की डेटिंग करते हैं''।[25]

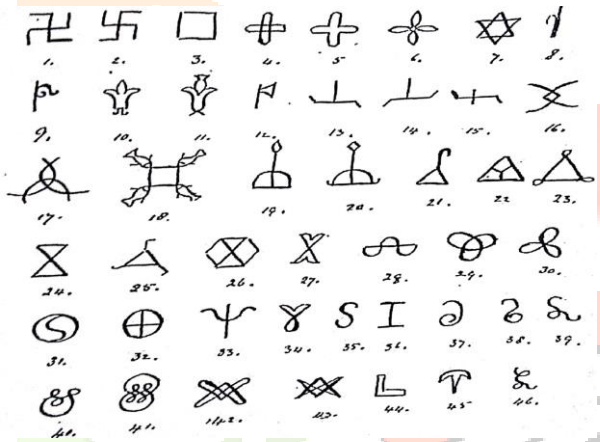

हुमायूं का मकबरा – इस बेहतरीन मकबरे का निर्माण हुमायुं की पत्नी हाजी बेगम ने 1556–69 अपनी पति की याद में बनवाया था।[26] इसमें मेसोनिक चिन्ह कई स्थानों पर ध्वज पत्थरों के 'अपक्षय/मौसम' के कारण लगभग समाप्त हो गये है। इन निशानों की खासियत है कि वे सामान्य से बड़े होते है। लगभग 8 इंच के बराबर होते है।[27]

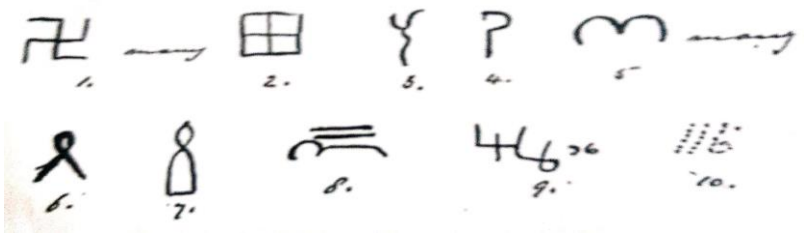

जुम्मा मस्जिद, दिल्ली – यह मस्जिद भारतीय मुसलमानों की महान केन्द्रीय मस्जिद है। इसे मुसलमानों का 'सेंट पीटर्स' कहा जा सकता है।[28] इसकी महान केन्द्रीय आंगन के झंडे पर निम्नललिखित शिल्पी निशान मिले हैं।[29]

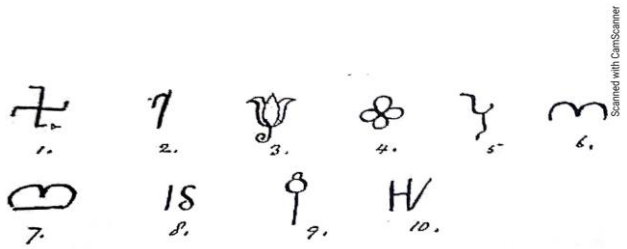

फतेहपुर सीकरी में ये शिल्पी चिन्ह मुख्य रूप से आंगन वाले फर्श के पत्थरों पर पाये गये है। साथ ही, दीवारों पर, आंगन के चारों और छोटे भवनों के खंभों पर, आगरा की ओर से प्रवेश द्वारा के पास मिले हैं।[30]

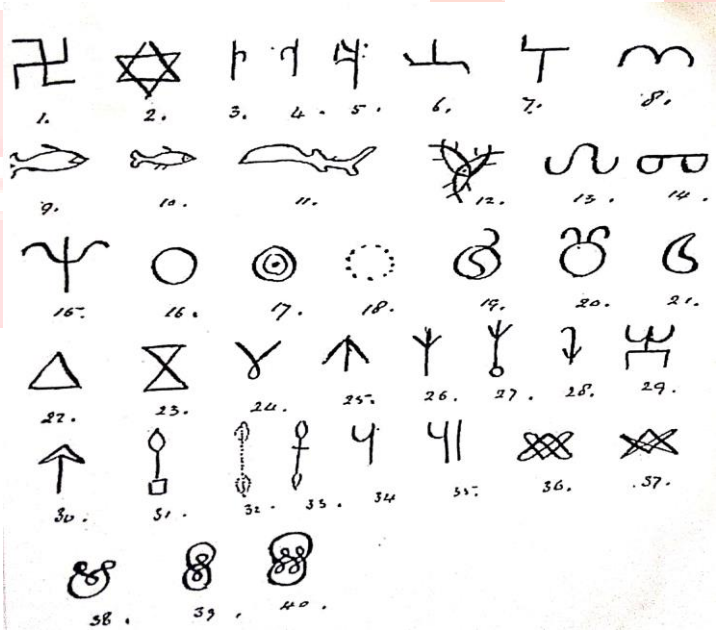

सिकन्दरा में अकबर का मकबरा बना हुआ था। ये शिल्पी चिन्ह केन्द्रीय मार्ग, ध्वज पत्थरों, मस्जिद के मंच पर मिले है जो इस प्रकार हैं :—[31]

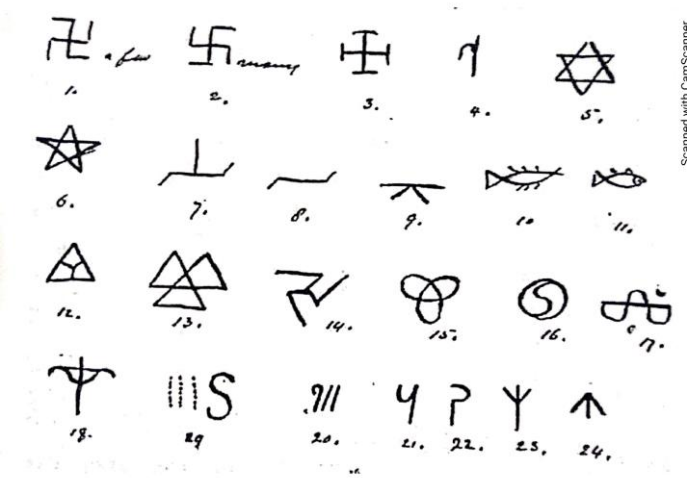

गारहम के अनुसार, 'अकबर से लेकर औरंगजेब के राज्यकाल तक, जब मुगल साम्राज्य का क्षय आरम्भ हो गया था, सक्रिय शिल्पी संघ के शिल्पियों को किले, मकबर और उद्यानों के निर्माण में लगाया गया था।[32] उन्हीं के अनुसार विशाल भवनों के निर्माण की परियोजना इस्लामी शासकों ने की थी जबकि सक्रिय कार्य जैसे खदान से पत्थर निकालने से लेकर उसे तराशने और बैठाने काम पूरा हिन्दू था। दूसरे शब्दों में, इमारतें इस्लामी है जबकि शिल्पी संघ हिन्दू।[33] नागरी में उत्कीर्ण नामों के आधार पर उन्होंने शिल्पी चिन्ह और नामों को हिन्दू बताया।

प्राचीन भवनों में लगाये गये पत्थरों, शिल्प तथा वास्तुखण्डो पर उत्कीर्ण शिल्पी चिन्ह तथा नामों के अतिरिक्त प्राचीन अभिलेखों में भी शिल्पियों के नाम मिलते हैं। मथुरा में गोविन्दनगर से प्राप्त बुद्ध की प्रसिद्ध प्रतिमा 'दिन्न' नामक शिल्पी ने गुप्त संवत 115 (434 ईसवी) में बनायी थी।[34] आर.सी.शर्मा ने अपनी पुस्तक बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ मथुरा में वर्णित किया है कि ''दिन्न के अतिरिक्त 'कुणिक' 'गोमितक' 'नाक' के नाम दिये है जो मौर्य–शुंग कालीन यक्ष प्रतिमाओं की पीठिका में उत्कीर्ण है। दिन्न निश्चय ही कुशल शिल्पी था जसा कि उसके द्वारा बनाई गई अन्य प्रतिमाओं से भी स्पष्ट है। मथुरा संग्रहालय की प्रसिद्ध बुद्ध–प्रतिमा की पीठिता में उत्कीर्ण अभिलेख में 'यशदिन्न' नाम

मिलता है जिसका तात्पर्य 'दिन्न का यश' है। कसिया की बुद्ध की महापरिनिर्वाण मूर्ति भी इसके दिन्न द्वारा प्रणयन की ओर इंगित करती है।[35]

अजन्ता के गुफाचित्रों में भारतीय कला तथा बौद्ध धर्म से सम्बन्धित चित्रण एवं शिल्पकारी के उत्कृष्ट नमूने मिलते है। चावल के मांड, गोंद और अन्य कुछ पत्तियों तथा वस्तुओं का समिश्रण कर अविष्कृत किये गये रंगो से ये चित्र बनाये गये हैं।[36] अजंता की गुफा 16 में श्री युगधर नामक सूत्रधार का नाम एक चित्र के नीचे मिला है।[37] अजंता के अभिलेखों में किसी भी अन्य चित्रकार अथवा शिल्पी का नाम नही मिला है, इसीलिए यह और भी महत्व रखता है।

चित्तौड़ के महाराणा कुम्भा ने गुजरात नरेश महमूद को पराजित करने के बाद चित्तौड़ के किले में एक विशाल कीर्ति स्तम्भ का निर्माण करवाया था।[38] यह कीर्तिस्तम्भ अपने वास्तुशिल्प के साथ–साथ देवप्रतिमाओं के अलंकरण के कारण विशेष महत्व रखता है। चित्तौड़गढ के कीर्तिस्तम्भ के तीसरे तल में उत्कीर्ण एक लघु लेख में शिल्पी जैत तथा उनके तीन पुत्रों नापा, पुंजा और पम की मूर्तियां भी लगाई गई है।[39]

उपयोगिता :

प्राचीन शिल्पशास्त्रों में उल्लिखित एवं उत्कीर्ण अभिलेखों में उपलब्ध शिल्पियों के नाम तथा इनमें प्राप्त सूचना के आधार पर प्राचीन शिल्पियों और उनके क्रियाकलापों पर अध्ययन किया गया है। इन शिल्पियों ने भारतीय पुरातत्व को महानतम लाभ प्रदान किया है। ना केवल इस विभाग के यूरोपीय अफसरों ने ही उत्खनन के कार्य में रूचिपूर्वक भाग लेना प्रारम्भ किया, अपितु नवयुवक भारतीय परीक्षाधीन उम्मीदवारों ने भी इसमें अटूट उत्साह दिखाया। सर्वप्रथम सांची, सारनाथ, भरहुत जैसे सुप्रसिद्ध बौद्ध स्थानों पर उत्खनन कार्य हुआ।[40] इन नगरों के सांस्कृतिक इतिहास के पुनर्निमाण के लिए अतीव

महत्वपूर्ण स्थान था। इसका कारण, जैसा कि सर जॉन मार्शल ने स्वयं बताया, यह था कि पुरातात्विकों की प्रारंभिक पीढ़ी की शोधों ने बौद्ध प्राचीनता पर अच्छा प्रकाश डाल दिया था और इसके अतिरिक्त इन बौद्ध स्थानो में कुछ दर्शनीय वस्तु की प्राप्ति की अच्छी गुंजाइश थी। इसके विपरीत अधिक विस्तृत अन्य नगरों के स्थानों पर इसकी संभावनाएं कम थीं।[41]

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि किसी भो प्राचीन भवन के निर्माण में कितने शिल्पी संघ अथवा परिवारों का योगदान रहा होगा इसका अनुमान शिल्पी चिन्हों तथा नामों की सहायता से कुछ सीमा तक लगाया जा सकता है यद्यपि यह सामग्री जुटाना काफी दुष्कर है। एक सुनिश्चित काल और क्षेत्र के भवनों से प्राप्त शिल्पी चिन्ह तथा नामों का तुलनात्मक अध्ययन करने से शिल्पियों के एक स्थान से दूसरे स्थान में जाकर कार्य करने की जानकारी भी मिल सकती है और विभिन्न कला शैलियों के उद्भव, विकास और प्रसार में शिल्पियों के योगदान का सही मूल्यांकन भी किया जा सकता है।

प्राचीन भारतीय कलाकार के अनामत्व के बारे में जो धारणाएं हैं, शिल्पियों, सूत्रधारों के बारे में प्राप्त प्रमाणों के आधार पर उन्हें उनसे अलग करके कला क्रियाकलापों को उनके सृष्टाओं को ध्यान में रखकर देखना आवश्यक हो गया है। दूसर शब्दों में, प्राचीन शिल्पियों और कलाकारों की कृतियों को मात्र उनके संरक्षक की दृश्टि से नहीं बल्कि उनके निर्माताओं की दृष्टि से देखना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्रजमोहन पांडे, पुरातत्व प्रसंग, स्वाति पब्लिकेशन्स, दिल्ली (1992)पृ.स.15
2. मारियो बुस्गाग्गली तथा सी शिवराममूर्ति, 5000 इयर्स आफ दि आर्ट आफ इंडिया, न्यूयार्क, 1971 पृ.स. 12
3. डॉ. श्रीकृष्ण ओझा, भारतीय पुरातत्व, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर (1998) पृ.स. 16
4. ब्रजमोहन पांडे, पुरातत्व प्रसंग, स्वाति पब्लिकेशन्स, दिल्ली (1992)पृ.स.16
5. जेनिफर एलैक्जेंडर, ए हिस्ट्री ऑफ स्टोनमेसोन्स मार्क्स एंड स्टोन बोंडिंग मैथड्स, पृ.सं. 43–5
6. एच.सरकार, क्रोनोलाजिकल आस्पेक्टस आफ मेसन्स मार्क्स फ्राम नागार्जुनकोण्डा, भारती, बुलेटिन आफ दी डिपार्टमैंट आफ एन्शियेंट इंडिया, हिस्ट्री, कल्चर एंड आर्कियोलोजी, बनारस हिन्दू यनिवर्सिटी, प्रो. वी.एस. अग्रवाल वोल्यूम सं. 12–14, 1968–71, पृ.सं. 226–235
7. प्रसन्न कुमार आचार्य, ए डिक्शनरी आफ हिन्दू आर्किटैक्चर, मानसार सीरिड खंड 1, ओरियंटल बुक्स रीप्रिंट कारपोरेशन, नई दिल्ली (1981) पृ.सं. 805–824
8. डॉ. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती', भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, राजस्थान हिन्दी गंथ अकादमी, जयपुर (2013) पृ. सं. 51
9. डॉ. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती', भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर (2013) पृ. सं. 59
10. डॉ. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती', भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर (2013) पृ. सं. 89 एवं डॉ. पृथ्वी कुमार अगवाल,

प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी (2007) पृ.सं. 161

11. आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी (1966), पृ. सं. 298

12. डॉ. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती', भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर (2013) पृ. सं. 95

13. एच.सरकार, क्रोनोलाजिकल आस्पेक्टस आफ मेसन्स मार्क्स फ्राम नागार्जुनकोण्डा, भारती, बुलेटिन आफ दी डिपार्टमैंट आफ एन्शियेंट इंडिया, हिस्ट्री, कल्चर एंड आर्कियोलोजी, बनारस हिन्दू यनिवर्सिटी, प्रो. वी.एस. अग्रवाल वोल्यूम सं. 12–14, 1968–71, पृ.सं. 226–235

14. डॉ. श्रीकृष्ण ओझा, भारतीय पुरातत्व, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर (1998) पृ.स. 19

15. एलैक्जेंडर कनिंघम, आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इंडिया, रिपोर्ट फार दि ईयर 1871–72, कलकत्ता (1873) जिल्द–3, प्रस्तावना पृ. VII

16. एलैक्जेंडर कनिंघम, आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इंडिया, रिपोर्ट फार दि ईयर 1871–72, कलकत्ता (1873) जिल्द–3, पृ.सं. 101

17. ए.सी.ऐल कार्लाइल, आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इंडिया रिपोर्ट ऑन टूअर्थ इन गोरखपुर, सारन एंड गाजीपुर इन 1877–78–79 एंड 80, कलकत्ता(1885) जिल्द 22, पृ. सं. 118

18. कनिंघम, उपरोक्त तथा आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट मेड डूरिंग द ईसर्य 1862–63–64–65 जिल्द– I, शिमला (1871) पृ.सं. 30

19. अल्टेकर, ए.एस.एज्यूकेशन इन एनशियन्ट इंडिया, सिक्सथ, नन्द किशोर एंड ब्रादर्स, वाराणसी एवं रियल्ली ओल्ड स्कूल गार्डन जे.ई. न्यूयोकि टाइम्स, दिसम्बर 9, 2006

20. रफी यू.समद, द ग्रेटर आफ गान्धार : द एनशियेन्ट बुद्धिस्ट सिविलाइजेशन आफ द स्वेट, पेशावर, काबुल एंड इंडस वैली अल्गोरा पब्लिकेशन (2011) पृ.सं. 146

21. कनिंघम, आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इंडिया, रिपोर्ट फार दि ईयर 1872–73, कलकत्ता (1875) जिल्द–5, पृ.सं. 64, 72

22. ए.गौरहम, इंडियन मेसन्स मार्क्स आफ दि मुगल डाइनेस्टी, सोसाइताज रोजिक्रूसियाना इन एंग्लिया के लिए प्रकाशन, लन्दन (1911)

23. ए.गौरहम, इंडियन मेसन्स मार्क्स आफ दि मुगल डाइनेस्टी, सोसाइताज रोजिक्रूसियाना इन एंग्लिया के लिए प्रकाशन, लन्दन (1911) पृ.सं. 6

24. ए.गौरहम, इंडियन मेसन्स मार्क्स आफ दि मुगल डाइनेस्टी, सोसाइताज रोजिक्रूसियाना इन एंग्लिया के लिए प्रकाशन, लन्दन (1911) पृ.सं. 6

25. ए.गौरहम, इंडियन मेसन्स मार्क्स आफ दि मुगल डाइनेस्टी, सोसाइताज रोजिक्रूसियाना इन एंग्लिया के लिए प्रकाशन, लन्दन (1911) पृ.सं. 9

26. ए.गौरहम, इंडियन मेसन्स मार्क्स आफ दि मुगल डाइनेस्टी, सोसाइताज रोजिक्रूसियाना इन एंग्लिया के लिए प्रकाशन, लन्दन (1911) पृ.सं. 11

27. ए.गौरहम, इंडियन मेसन्स मार्क्स आफ दि मुगल डाइनेस्टी, सोसाइताज रोजिक्रूसियाना इन एंग्लिया के लिए प्रकाशन, लन्दन (1911) पृ.सं. 12

28. ए.गौरहम, इंडियन मेसन्स मार्क्स आफ दि मुगल डाइनेस्टी, सोसाइताज रोजिक्रूसियाना इन एंग्लिया के लिए प्रकाशन, लन्दन (1911) पृ.सं. 28

29. ए.गौरहम, इंडियन मेसन्स मार्क्स आफ दि मुगल डाइनेस्टी, सोसाइताज रोजिक्रूसियाना इन एंग्लिया के लिए प्रकाशन, लन्दन (1911) पृ.सं. 29

30. ए.गौरहम, इंडियन मेसन्स मार्क्स आफ दि मुगल डाइनेस्टी, सोसाइताज रोजिक्रूसियाना इन एंग्लिया के लिए प्रकाशन, लन्दन (1911) पृ.सं. 14

31. ए.गौरहम, इंडियन मेसन्स मार्क्स आफ दि मुगल डाइनेस्टी, सोसाइताज रोजिक्रूसियाना इन एंग्लिया के लिए प्रकाशन, लन्दन (1911) पृ.सं. 16

32. ए.गौरहम, इंडियन मेसन्स मार्क्स आफ दि मुगल डाइनेस्टी, सोसाइताज रोजिक्रूसियाना इन एंग्लिया के लिए प्रकाशन, लन्दन (1911) पृ.सं. 37

33. ए.गौरहम, इंडियन मेसन्स मार्क्स आफ दि मुगल डाइनेस्टी, सोसाइताज रोजिक्रूसियाना इन एंग्लिया के लिए प्रकाशन, लन्दन (1911) पृ.सं. 38

34. आर.सी.शर्मा, बुद्धिस्ट आर्ट आफ मथुरा, अगम कला प्रकाशन, दिल्ली (1984) पृ.सं. 139

35. जे.पी.एच. फोगल, ऐक्सकेवेशन्स एट कसिया, आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इंडिया, एनुअल रिपोर्ट 1906–07 (पुर्नमुद्रित 1990) पृ.सं. 143

36. अजन्ता केव्ज, युनेस्का वर्ल्ड हेरीटेज साइट (2006) एवं चोपड़ा, पुरी एंड दास, भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, मैक्मिलन इंडिया लिमिटेड, दिल्ली (1975) पृ.सं.290

37. एम.के.ढवलिकर, 'थ्री युगधर–ए मास्टर आर्टिस्ट आफ अजन्ता', आर्तिबुक्स एशिए, जिल्द–31, संख्या 4, 1969, पृ.सं. 301–308

38. रत्नचन्द्र अग्रवाल, सम फेमस स्कल्पचर्स एंड आर्किटैक्टस आफ मेवाड (15 सेन्चुरी ए.डी.), इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टली, जिल्द 32, (1957) पृ.सं. 321–334

39. विश्वेश्वरा नन्द 'इण्डोलाजिकल जर्नल' जिल्द–I भाग–2, सितम्बर 1963, पृ.स. 329–334

40. डॉ. श्रीकृष्ण ओझा, भारतीय पुरातत्व, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर (1998) पृ.स. 20

41. डॉ. श्रीकृष्ण ओझा, भारतीय पुरातत्व, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर (1998) पृ.स. 20